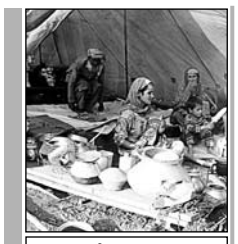

धर्मनिरपेक्षता, जनतंत्र समाजवाद, समानता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के लिए समर्पित समाचार पत्र

हिंदी साप्ताहिक

जनता रैबार

मसूरी से प्रकाशित समाचार पत्र | वर्ष 02 अंक 48 पृष्ठ : 06 | RNI-UTTHIN/126435/2013 | मूल्य :1/-प्रति, वार्षिक 120 रुपये

रविवार 23 नवंबर 2014

₹ 1

लोग से दूर होता लो. कतंत्र – 6 पर पर देखें

एनएपीएम का नेशनल कन्वेंशन पुना में हुआ संपन्न – पेज 6 पर

1 - 6

भाग – 2

एक गरीब की विनम्र चुनौती

– गोपाल राम

मैंने अपनी स्कूल की पढ़ाई के दौरान इतिहास की पुस्तक में पढ़ा था कि जहांगीर के शासन काल में उनके महल के बाहर एक बड़ी घंटी टकी रहती थी और उस घंटी से एक जंजीर लगी थी जिसका एक सिरा सड़क पर था। उस सिरे को पकड़कर कोई भी नागरिक, जन–सामान्य अपनी फरियाद को लेकर घंटी बजा सकता था और जहांगीर महल से बाहर झरोखे पर आकर वहां से उस व्यक्ति की फरियाद को सुनते थे व समस्या का निराकरण करते थे। यह राजा व प्रजा के बीच संवाद का सीधा तरीका था। उस समय–काल में ये न्याय (सामाजिक–राजनीतिक) का ढ़ांचा था। जिससे फरियादी की समस्या पर तत्काल गौर फरमाया जा सकता था। इस घटना का जिक्र करने का उद्देश्य राजयुगीन व्यवस्थाओं को सही या गलत ठहराना नहीं है बल्कि इस तरफ ध्यानाकर्षण करना है कि यह उस समय की सामाजिक–राजनीतिक न्याय की व्यवस्था थी। जनता से, अवाम से सीधे जुड़ाव का यह तरीका उस समय विकसित किया गया था या राजा भेष बदलकर जनता के बीच में अपने बारे में व अपने शासन की मजबूतियों–कमजो. रियों पर राय जानने व व्यवहार देखने जाया करते थे ताकि उचित कदम उठाये जा सकें और उनके राज के प्रति लोगों मे जनाक्रोश कम हो। यह मध्यकालीन हिन्दुस्तान में जनता तक पहुंचाने का, न्याय करने का तरीका था।

आज हम लोकतंत्र के जमाने में हैं। हमारे पास जनता द्वारा चुनी हुई सरकार के साथ–साथ प्रदेशों व जिलों के स्तर पर सिलसिलेवार, प्रचलित शब्दावली में कहें तो चुस्त–दुरस्त, सभ्य, पढ़ी–लिखी (आजकल पढ़ा–लिखा होना ही शिक्षित होने का पर्याय माना जाता है) प्रशासनिक जमात है। इस प्रशासनिक जमात व उसके ढांचे को समझने के लिए इतिहास पर नजर डालने की आवश्यकता पड़ेगी। इतिहास हमें बताता है कि जब अंग्रेजों को यह आश्वस्ति हो गयी कि हम हिन्दुस्तान में स्थायी रूप से राज कर सकते हैं तो इसके लिए उन्हें एक मजबूत प्रशासनिक ढाँचे की जरूरत पड़ी। प्रांतों व जिलों के स्तर पर नौकरशाही की एक फौज तैनात की गयी। तमाम तरह के विभागों को चलाने के लिए एक अफसरशाही की आवश्यकता पड़ी जिसे 'इंडियन सिविल सर्विस' कहा गया। ताकि तमाम तरह का नियंत्रण व्यवस्थित रूप से किया जा सके। आजाद हिन्दुस्तान में भी यह औपनिवेशिक ढांचा ज्यों का त्यों बना रहा। बस एक शाब्दिक बदलाव जरूर हो गया। पहले आई.सी.एस. था अब आई.ए.एस. है। 'सी' की जगह 'ए' हो गया। तमाम नीतियों व कामकाज के ढांचे को क्रियान्वित करने वाली इस व्यवस्था का भी मूल्यांकन करना आज आवश्यकता लगती है क्योंकि व्यापक समाज में लोकतंत्र के मूल्यों के प्रवाह व ठहराव दोनों स्थितियों के लिए यही नौकरशाही जिम्मेदार है।

जनकल्याणकारी नीतियों को धरातलीय स्तर पर क्रियान्वित करने वाली इस प्रशासनिक सेवा का क्या हाल है इसकी एक झलक मुझे तब मिली जब 1999 में मैं मसूरी स्थित एक गांधीवादी शिक्षण संस्थान में अध्ययनरत था। वहां हर वर्ष लाल बहादुर शास्त्री एकेडमी, मसूरी से आई.ए.एस. सेवा का प्रशिक्षण ले रहे बैच आते थे; उस साल भी आये। उस दौरान संस्थान के मुखिया वहां नहीं थे। आई.ए.एस. के प्रशिक्षु इन लोगों से बातचीत के दौरान संस्थान के एक साथी ने जब संस्थान में चल रही वैकल्पिक शिक्षण की खोज की प्रक्रिया से इनको अवगत कराना चाहा तो वो बीच में ही इतने आक्रोशित हो गये कि कुछ सुनना तो दूर रहा बल्कि सारे लोग अलग–अलग अपनी जगहों पर जोर–जोर से बोलने लगे कि आप लोगों की शैक्षिणक योग्यता क्या है? तुमको इस संस्थान में तनख्वाह कितनी मिलती है? तुमको एजुकेशन पर काम करने का अधिकार किसने दिया है? इत्यादि इत्यादि। बोल रहे साथी चुप हो गये क्योंकि इन लोगों को जवाब नहीं सुनना था। जवाब ही क्या, कुछ भी नहीं सुनना था। हम तो विद्यार्थी थे हमारा चुप रहना

हमारी मर्यादा का हिस्सा था। हम उन्हें भी समझना चाहते थे। ये सब बातचीत के बाद उनसे उस वक्त संवाद संभव न था। जब चर्चा कक्ष से बाहर आये तो मैं बाहर खड़ा था। उनमें से दो–तीन लोग मेरे पास आये और एक अकड़ के साथ बोले, तुम वहां क्या हो? मैंने संक्षिप्त सा जवाब दिया कि अध्ययन करता हूं। उनमें से एक तपाक से बोले कि यहां तुम्हारा ब्रेनवॉश किया जा रहा है। न चाहते हुए भी मेरे मुंह से निकल गया कि हमारा तो ब्रेनवॉश किया जा रहा है, लेकिन आप लोगों का क्या किया जा रहा है; वो अब कुछ–कुछ समझ में आ रहा है। उसके बाद वे कुछ बोल नहीं पाये क्योंकि यह अपेक्षित जवाब न था। इसके अतिरिक्त बोलना मुझे भी अपनी मर्यादा के खिलाफ लगा। मैं वहां से चला गया पर ये घटना मेरे सोच के हिस्सों में काफी समय तक चलती रही।

मन में एक तरह का आक्रोश भर गया कि क्या समझते हैं ये लोग अपने आप को और क्या समझते हैं अन्य लोगों को। मुझे लगा कि जैसे उनको लगता हो कि हम ही सुपी. रियर हैं बाकी मूर्ख हैं। उनको कुछ समझ में नहीं आता। पर मेरा ध्यान इससे इतर इस बात पर गया कि अपने इतर लोगों को 'पशुतुल्य' समझने वाले इन लोगों का दिमाग ऐसा कैसे बनता है, क्या सिखाया जाता है इनको ऐसा। तब ध्यान इस तरफ धीरे–धीरे जाने लगा कि जिस तरह की शिक्षा इनको दी जा रही है जो पढ़ाया जा रहा है कि लोगों को कैसे हैण्डल करना है, नियन्त्रित करना है, ये उसी की देन है। 'आधुनिक' नाम से प्रचारित शिक्षा का सबसे बड़ा कसूर ये है कि वह ऐसा संस्कार मन में बिठा देती है जिससे आदमी ये मानने लगता है कि पढ़ाई–लिखाई ही दुनिया को समझने का एकमात्र रास्ता है, इसके अलावा जो है वो पिछड़ा है, असभ्य तरीका है, अनर्गल है, अप्रमाणित है इत्यादि। इससे यह बात ध्यान में ही नहीं आती कि जिन्दगी व दुनिया को समझने के और भी तरीके हो सकते हैं। पढ़ाई–लिखाई भी उसमें से एक तरीका है। अन्यथा यदि यही सत्य होता तो पढ़े–लिखे लोगों ने इस दुनिया को आज तक स्वर्ग बना दिया होता। पर सत्यता इसके ठीक विपरीत है। जो तथाकथित पढ़ा–लिखा है वो अपने ज्ञान के ऐसे अहंकार में है कि उसे ये दिखाई नहीं पड़ता कि जो सूचनायें उसके पास हैं उसके अलावा भी ज्ञान का व्यापक क्षेत्र है। यदि हम पढ़े–लिखे की जमात द्वारा किये गये दुनिया के नुकसान व गैर पढ़े–लिखों द्वारा किये गये नुकसान को देखेंगे तो इस तंत्र की एक और तस्वीर समझ में आयेगी। साथ ही हम पढ़ाई–लिखाई को जितना उसका स्थान है, उतना देख पायेंगे। कम या ज्यादा न आंककर। अब पढ़ाई–लिखाई द्वारा दिमाग एक खास तरह की दिशा में सोचने के लिए तैयार किया जा रहा है। शायद इसी को 'ब्रेनवॉश' कहते हैं। अन्यथा किसी अन्य के सत्य को भी सुनने की क्षमता आ गयी होती और 'सामान्य आदमी' जिसको इस व्यवस्था में नीचे पायदान पर माना जाता है उसके प्रति भी व्यवहार में उदारता व विनम्रता आ गयी होती। ये मानसिकता हमें ब्रिटिश काल में विरासत में मिली है। अब हम मान. सिकता के लोग प्रशासनिक सेवा में, जो उन्हीं लोगों के लिए है, जिनके बारे में इनकी राय इस दर्जे की है तो कैसी व्यवस्थाएं संचालित होंगी ये सोचनीय विषय है। क्योंकि लो. कतांत्रिक व्यवस्था में नीतियों के क्रियान्वयन की पूरी जिम्मेदारी इस तबके पर है और जहांगीर की अवाम के प्रति न्याय पद्धति को ये पिछड़ापन मानेंगे, असभ्य तरीका मानेंगे। मैं 'गरीबी' के प्रति सचेत हूं और अपनी नई–नवेली सरकार द्वारा घोषित 'गरीबों की सरकार' शब्दावली के प्रति आकर्षित हूं। मैं इस घोषणा से आशान्वित हूं इसलिए लोकतंत्र के इस महत्वपूर्ण ढांचे (नीतियों, पद्धतियों, जनकल्याणकारी योजनाओं) को लोगों तक यानी गरीबों तक पहुंचाने वाली महत्वपूर्ण इकाई प्रशासनिक तंत्र को नजरअंदाज नहीं कर सकता। इसलिए इस देश की 'प्रशासनिक गरीबी' पर मेरा स्वाभाविक रूप से ध्यान चला जाता है। मैंने अपने अंग्रेजों से सुना है कि भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गांधी जी ने कभी कहा था कि "हम विकास हेतु 1 रुपया भेजते हैं और गांव तक पहुंचता है केवल 25 पैसा"। मुझे शब्दशः याद नहीं पर सार यही है। मैंने इस पर सोचा कि ऐसा कैसे हो सकता है। अब पहुंच. ाने वाले तंत्र पर ध्यान दिया गया। पहुंचाने वाला तो प्रशासन ही है। यदि गांव व गरीब तक 75 पैसे नहीं पहुंचा तो वो गया कहां ये भी सवाल हैं भ्रष्टाचार पर तमाशा खड़ा करने वालों का ध्यान इस तरफ भी जाना चाहिए। इसकी तफसील में मैं नहीं जाना चाहता, कारण मुझे नहीं पता कि 75 पैसा कहां गया। उन्हें ज्यादा पता होगा जिनके हाथ में राजीव जी ने गांव–गरीब तक पहुंचाने के लिए 1 रुपया पकड़वाया था। अब 1 रुपये का ये हाल हुआ तो करोड़ों का क्या होता होगा मेरी समझ से बाहर है क्योंकि अपनी रोजी–रोटी का संघर्ष मुझे इस आंकडे तक सोचने नहीं देता।

नोट : शेष लेख पेज चार पर देखें...

...ये प्राकृति नहीं, गरीबी की मार

प्रकृति के कहर ने जम्मू–कश्मीर को एक बार फिर बर्बादी की दहलीज पर लाकर खड़ा कर दिया है। आसमान से आई आफत ने धरती के इस स्वर्ग को नरक बना दिया। कश्मीर में बीते कुछ साल पहले आए भूंकप के बाद बीती 5 सितंबर 2014 यहां के वाषिदों पर भारी पड़ा। इस विपदा में सैकड़ों जिंदगियां गईं, हजारों परिवार सड़क पर आ गए। मुझे इन दोनों विपदाओं में यहां युसुफ मेहरअली सेंटर के मार्फत काम करने का अवसर मिला। सूनामी, गुजरात भूंकप से लेकर उत्तराखंड की बीते साल की त्रासदी नजदीक से देखी। पीड़ितों के जख्मों पर मरहम जितना भी लगा पाए हों, मगर पीड़ितों का दुख–दर्द तो नजदीक से देखा। पर, जम्मू–कश्मीर में इस साल आई विपदा कई मायनों में इन त्रासदियों से अलग है। यहां पीड़ितों पर प्राकृतिक की मार कम और गरीबी की ज्यादा दिखलाई पड़ती है। इसके ज्यादा षिकार भी दलित और पिछड़े मुसलमान ही हुए हैं। हालांकि, हर आपदा में ऐसा ही देखने को मिलता है, मगर जम्मू–कश्मीर में प्रकृति की मार का गरीबों पर पड़ा असर ज्यादा है।

दरअसल, श्रीनगर को छोड़ राज्य के दूसरे हिस्सों में भारी बारिश ने गरीबों के ही आशियाने उजाड़े। इनमें ज्यादातर मुस्लिम गुर्जर और दलित समुदाय के परिवार शामिल हैं। कुछ अन्य पिछड़ी जातियां भीं। इनके घर कच्चे थे। उंचे–खड़े पहाड़ों पर पत्थरों से बनी घर की दीवारें मिट्टी के सहारे खड़ी थीं। इतना ही नहीं, घर की छत भी लकड़ी की बल्लियों के सहारे टिकी मिट्टी की बनी थी। घर की छत पर पहले चीड़ की लकड़ी से बनी बल्लियां, फिर चपटे पत्थर और उसके उपर मिटटी की मोटी परत। इसी तरह के घरों में कटती है गरीबों की जिंदगी।

मगर, बीते पांच सितंबर को आई भारी बारिश ने ऊंचे पहाड़ों पर बने इन घरों पर मानों कहर बरपा दिया। चारों ओर से पड़े बारिष के थपेड़ों से दीवारों के पत्थर जोड़ने वाली मिट्टी बह गई और दीवारें ढह गईं। जिनके छतों की बल्लियां पुरानी हो चुकी थी, वो भी मिट्टी का वजन बढ़ने से जमीन पर आ गई। जो छतें जमींदोज होने से बची भी, उनकी हालत जर्जर है। जिनके

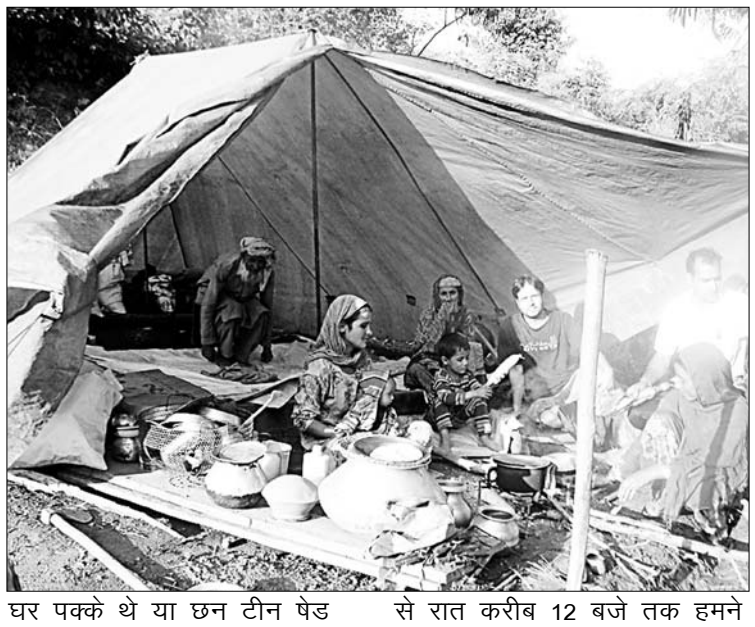

घर पक्के थे या छन टीन षेड के बने हैं, इनको कोई खास नुकसान भी नहीं हुआ। मिट्टी के सहारे बने घरों में रहने वाले ही बेघर हुए। यहां न पानी के तेज बहाव, न भूस्खलन से कोई हानि हुई। कहते हैं प्राकृति का कहर किसी को नहीं छोड़ता। कश्मीर में हमने देखा था कि भूकंप की मार अमीर–गरीब सब पर पड़ी थी। मगर, यहां तो मार सिर्फ गरीबों पर ही पड़ी। जाहिर है, जम्मू–कश्मीर की इस त्रासदी के लिए प्राकृति कम और गरीबी ज्यादा जिम्मेदार थी।

इन गरीब पीड़ितों पर एक और मार पड़ी। ये शासन–प्रशासन के आलीषान सुख–सुविधाओं में रहने वाले उन नुमाइंदों ने पैदा की हुई थी, जो इनकी गरीबी के लिए भी जिम्मेदार हैं। युसुफ मेहरअली सेंटर की टीम 12 सितंबर को राजौरी पहुंची, यहां से 8 किमी पहले जम्मू–राजौरी हाईवे से लगी दलोगढ़ा पंचायत है। करीब 10 किमी के पैदल पहाड़ी क्षेत्र में फैली इस पंचायत में कुल करीब 275 परिवार हैं। इनमें अनुसूचित जाति के 24 परिवारों में से 12 घर पूरी तरह छतिग्रस्त होने से नौ दिनों से खुले आसमान के नीचे रहने को मजबूर थे। इसी तरह ओबीवी के 36 में 10, एसटी मुस्लिम के कुल 102 में से करीब 25 और सामान्य जाति के 100 में से 10 परिवारों के घर पूरी तरह ध्वस्त हो चुके थे। इसके अलावा पंचायत के 150 से अधिक घरों में दरार आने, छत धंसने, छत से पानी घूसने, दीवार टूटने, मलबा आने, आंगन धंसने आदि की वजह से रहने लायक नहीं रह गए हैं। ये परिवार भी बेघर हो चुके हैं। जो लोग मजबूरन इन घरों में हैं, उनके सिर पर हर समय मौत का खतरा मंडरा रहा है। इनमें भी 90 फीसदी परिवार एससी–एसटी के ही हैं।

12 सितंबर को सुबह आठ बजे से रात करीब 12 बजे तक हमने पूरी पंचायत का एक–एक घर जाकर हालचाल जाना, नुकसान का जायजा लिया। एक साल के बच्चे से लेकर 90 साल के बुजुर्ग, महिलाएं खेतों में, पेड़ के नीचे सिर छुपाए बैठे थे। इनके पास तिरपाल तक नहीं थी। बिस्तर, कपड़े, बर्तन, राशन भी मलबे में दब गया था। कुछ लोगों ने बताया कि दिनभर घर के बाहर सुरक्षित बचे या टूट–फूट चुके सामान, मक्का की खेती की देखभाल करने के बाद आसपास स्थित रिश्तेदारों के घरों पर रात गुजारने को चले जाते हैं, जबकि कुछ खेतों में ही रात बिताने को मजबूर थे। हालांकि दूर–दूर बसे पड़ोसियों के ये घर भी बहुत सुरक्षित नहीं थे। कुछ लोगों ने टूटी–फूटी तिरपालें खेतों में डाल रखी थी। पेट का गुजारा खेतों में खड़ा हरा मक्का ही बचा था। बिजली गुल थी और रास्ते नाले उफनने से पूरी तरह क्षतिग्रस्त। रात को उजाले के तौर पर लोगों को चुल्हे की आग का ही सहारा था।

दिल दहला देने वाले इन वाकयों के बीच हैरानी इस बात से हुई कि पांच सिंतबर से नरक जैसी जिंदगी जीने को मजबूर इन बेघर गरीबों की सुध लेने शासन–प्रशासन का कोई नुमाइंदा 8 दिन बाद भी नहीं पहुंचा था। दलोगढ़ा पंचायत में प्राथमिक स्कूल और पंचायत का भवन भी था, मगर वहां भी पीड़ितों को षिट करना जरूरी नहीं समझा गया। हमारे साथ चल रहे सरपंच अश्विनी कुमार शर्मा ने हमने इस संदर्भ में पूछा तो वो भी बोले "पटवारी, तहसीलदा को कई बार फोन किया गया, लेकिन कोई नहीं पहुंचा, फोन पर ठीक से बात करने को भी कोई राजी नहीं है, पंचायत के पास भी कोई साधन नहीं है, मरनेगा का भुगतान तक बीते एक साल से नहीं हुआ"। गांव के सक्षम ग्रामीणों से दलित–मुस्लिम गुर्जरों की बदहाली के बारे में बात की। उन्होंने कहा "प्रदेश के मुख्यमंत्री मुस्लिम और उप मुख्यमंत्री दलित हैं, मगर वो आज तक अपने ही समुदाय के लोगों का भला नहीं कर सके, उनके के जाति–मजहब के लोग आज सड़क पर हैं, पर सुध लेने तक को उनके नुमाइंदे नहीं आ रहे"।

पीड़ितों का दुख–दर्द और शासन प्रशासन की बेरूखी से हम हैरान–चिंतित थे। तुरंत डिप्टी कमिश्नर से इस संदर्भ में बात. चीत की मन में ठानी, सरपंच और एक सेवानिवृत्त नायब सूब. दार दीलिप कुमार से इस संदर्भ में चर्चा की, मगर वो बोले "साहब यहां आप किसी अधिकारी का घिराव नहीं कर सकते, ऐसे वाकये कभी होते भी नहीं है, आप शांतिपूर्वक वार्ता करने भी जाएंगे, तो कोई सुनेगा नहीं, फायदा कुछ नहीं है।

प्रदर्शन–घिराव की बात करने से भी भी कतरा रहे थे" हमने दिनभर लोगों से बातचीत की, कुछ पीड़ित परिवारों के नौजवानों ने प्रदर्षन को हामी भरी, तो हमने सूबेदार और सरपंच साहब को आपदा के मानकों का पाठ पढ़ाते हुए बताया कि उनकी पंचायत के पीड़ितों के साथ अन्याय हो रहा है, सरपंच बोले पूरे राजौरी और पुंछ यही हाल हल है साहब।

हमने उन्हें अपने बारे में बताया, मेधा पाटकर से लेकर डा. सुनीलम, डा. जीजी पारिख के बारे में उन्हें बताया। उत्तराखंड में आपदा के दौरान लापरवाही बरतने वाले सरकारी नुमाइंदों को किस तरह ठीक किया, प्रभावित को 24 घंटे के भीतर राहत राशि नहीं मिलती थी, तो उस अधिकारी का क्या हाल होता था आदि सब भी बताया। मेधा ताई से बात कराई। तब जाकर सरपंच साहब डिप्टी कमिश्नर के कार्यालय तक जाने को तैयार हुए। षाम नौ बजे पंचायत भवन में एक बैठक बुलाई, इसकी सूचना दिनभर लोगों तक पहुंचाई। 100 लोग दूर–दूर से आकर बैठक में जमा हुए। सबके साथ अगले दिन के कार्यक्रम की चर्चा की, लोगों को विश्वास दिलाया कि हम हर मुश्किल घड़ी में उनके साथ खड़े रहेंगे।

बहरहाल, 13 सितंबर को पंचायत के 200 से ज्यादा महिला–बुजुर्ग और युवा साथी नेशनल अलायंस ऑफ पीपुल्स मोवमेंट, युसुफ मेहरअली युवा बिरादरी के नेतृत्व में डिप्टी कमिश्नर के कार्यालय में पहुंचे। कार्यालय के बाहर जोरदार प्रदर्शन हुआ, एक प्रति. निधिमंडल डिप्टी कमिश्नर से मिलने पहुंचे, मगर उन्होंने दो टूक कहा "आपको यहां आने की क्या जरूरत है, हमारी टीम खुद आपके पास पहुंचेगी" उनके इस बयान पर जब मैने कहा कि आपके कार्यालय से मात्र आठ किमी की दूरी पर मुख्य मार्ग से लगी दलोगढ़ा पंचायत के 200 परिवार पीछले नौ दिनों से बगैर छत के, भूखे–प्यासे खुले आसमान के नीचे–बारिश के बीच रात गुजारने को मजबूर हैं, तो डिप्टी कमिनश्र साबह ने मुझे सीधे कहा ""हल्के टोन में बात करो, वरना यहां से बाहर जाओ, हम प्राथमिकता के आधार पर काम कर रहे हैं"। मुझे तुंरत सरपंच और सूबेदार साहब की बात याद आई। 9 दिन से बेघर 200 परिवार प्राथमिकता में नहीं है, तो उनके कामकाज के तौर–तरीके का भी अंदाज हो गया।***नोट : शेष लेख पेज 3 पर देखें....***

इन गरीब पीड़ितों पर एक और मार पड़ी। ये शासन–प्रशासन के आलीशान सुख–सुविधाओं में रहने वाले उन नुमाइंदों ने पैदा की हुई थी, जो इनकी गरीबी के लिए भी जिम्मेदार हैं। युसुफ मेहरअली सेंटर की टीम 12 सितंबर को राजौरी पहुंची, यहां से 8 किमी पहले जम्मू–राजौरी हाईवे से लगी दलोगढ़ा पंचायत है। करीब 10 किमी के पैदल पहाड़ी क्षेत्र में फैली इस पंचायत में कुल करीब 275 परिवार हैं। इनमें अनुसूचित जाति के 24 परिवारों में से 12 घर पूरी तरह छतिग्रस्त होने से नौ दिनों से खुले आसमान के नीचे रहने को मजबूर थे। इसी तरह ओबीवी के 36 में 10, एसटी मुस्लिम के कुल 102 में से करीब 25 और सामान्य जाति के 100 में से 10 परिवारों के घर पूरी तरह ध्वस्त हो चुके थे। इसके अलावा पंचायत के 150 से अधिक घरों में दरार आने, छत धंसने, छत से पानी घूसने, दीवार टूटने, मलबा आने, आंगन धंसने आदि की वजह से रहने लायक नहीं रह गए हैं। ये परिवार भी बेघर हो चुके हैं। जो लोग मजबूरन इन घरों में हैं, उनके सिर पर हर समय मौत का खतरा मंडरा रहा है। इनमें भी 90 फीसदी परिवार एससी–एसटी के हैं।

शेष खबर

...ये प्राकृति नहीं, गरीबी की मार

पंचायत की सबसे उंची चोटी पर बेघर हुए मौ. फरीद ने मायूस होकर बताया 13 सितंबर के प्रदर्षन के तुरंत बाद तहसील स्तर के अधिकारी पहुंचे, फरियाद सुनी और तुरंत राहत का आष्वासन भी मिला, मगर एक प्लास्टिक की पतली तिरपाल को छोड़ डेढ़ महीने तक उन्हें कोई राहत नहीं मिल सकी। रात को कड़क ठंड में के लिए नन्हें बच्चे, बुजुर्गों की बदहाली का रोना बार–बार रोया, तो जाकर तहसीलदार ने आर्मी को एक टैंट देने को चिट्टी लिखी। ऐड़ी–चोटी का जोर लगाकर यह टैंट आर्मी से निकलवाकर खंडहर घर के पास लगाया ही था कि कुछ दिन बाद आर्मी ने इसे भी वापस लौटाने का फरमान सुना दिया। बस इस टैंट को भी चोटी तक पहुंचाने और वापस ले जाने का ही काम हुआ। अब साधन विहीन हो चुके मौ. फरीद अपने करीब 13 सदस्यों के परिवार, जिनमें डेढ़ साल के मासूम बच्चे से लेकर 70 साल पार कर चुके बुजुग भी षामिल हैं, के साथ खेतों में तिरपाल के नीचे जंगली जानवरों के आतंक के सायें और तेज बर्फीली हवाओं के थपेड़ों में काली रातें गुजारने को मजबूर था।

खैर, हम भी मानने वाले नहीं थे। डिप्टी कमिश्नर के बयान के बाद हमारे बीच तीखी जुबानी जंग हुई। हमने उनकेकर्तव्य–जिम्मेदारी याद दिलाई तो जाकर उन्होंने तहसीलदार को तुरंत दलोगढ़ा पंचायत का सर्वे करने और राहत पहुंचाने का निर्देश दिया। अगले दिन कुछ राहत भी पहुंचाने का प्रयास किया। मगर, लोग अक्टूबर मध्य तब बेघर ही थे। उन्हें तिरपाल के कुछ टूकड़े ही सरकार की तरफ से नसीब हुए हैं। अलबत्ता, युसुफ मेहरअली सेंटर ने इस पंचायत में राशन, कंबल बांटने का काम किया, जबकि टीन शेड आदि उपलब्ध कराए जा रहे हैं, ताकि लोग दोबारा मिट्टी की छत न डाले। स्थानीय जनप्रतिनिधियों ने बताया कि सरकार की तरफ से जो मुआवजा मिलता है, उससे पहाड़ों पर बने घरों तक सामग्री का ढूलान करना तक संभव नहीं होता। मुझे बताया गया कि ध्वस्त हुए कच्चे घरों को तो 17 हजार तक ही मुआवजा मिलेगा। इसके लिए भी पुलिस थाने में रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए चक्कर काटने होंगे, जमीन नाम पर होनी चाहिए, कई तरह के आवेदन फार्म, शपथ पत्र भरने होंगे। स्थानीय लोगों बताया कि राजौरी में आवेदन फार्म मिल ही नहीं रहे, मिलते भी हैं तो वास्तविक कीमत से कई गुना ज्यादा दाम वसूला जा रहा है। सरकारी बाबू का ख्याल अलग से रखना होता है। जाहिर है, जितना पैसा मिलना है, उतना दौड़–धूप, फाइल तैयार करने में खर्च हो जाएगा, इसलिए कई प्रभावितों ने इस सरकारी पचड़े में पड़ना ही फिजूल का काम समझा।

दलोगढ़ा जैसा हाल राजौरी और पुंछ की हर पंचायत का था। आसमान पर आर्मी के हैलीकॉप्टर खूब मंडराते दिख रहे थे, लोग इनके जरिए राहत सामग्री पहुंचने की उम्मीद में बैठे थे, मगर किसी को मिल कुछ नहीं रहा था। सड़क मार्ग भी दुरूस्त हो चुके थे। हर प्रभावित यह सोचकर रहा था कि आखिर ये सामान बांटा किसे जा रहा है। त्रासदी के 11वें दिन हम रामबन जिला, पंचहरी और चिनानी विधानसभाओं में पहुंचे, अनंतनाग का हालचाल जाना। लेकिन, वहां भी हाल राजौरी जैसे ही थे। नेता हबड़–तबड़ में थे और अधिकार आपदा की त्रासदी से बेखर–बेपरवाह।

मैं तो गरीबी और सत्ता की बेरूखी के सताए दलोगढ़ा पंचायत के प्रभावितों का आपदा के नौ दिन बाद की बदहाली का ही दुखड़ा रोता फिर रहा था, मगर जब पहले त्रासदी के करीब एक महीने और फिर डेढ़ महीने बाद दलोगढ़ा पंचायत के प्रभावितों को हालचाल जानने और युसुफ मेहरअली सेंटर द्वारा यहां के प्रभावित परिवारों के लिए जुटाया सामान टीन की चादरें, कंबल आदि वितरित करने पहुंचा, तो वहां के हालात तब भी चौकाने वाले थे। जमींदोज हो चुके जिन घरों का हमने 12 सितंबर को सर्वे किया था, वो उसी हाल में थे। सरकार से मदद न ही कोई आष्वासन। पंचायत की सबसे उंची चोटी पर बेघर हुए मौ. फरीद ने मायूस होकर बताया 13 सितंबर के प्रदर्षन के तुरंत बाद तहसील स्तर के अधिकारी पहुंचे, फरियाद सुनी और तुरंत राहत का आष्वासन भी मिला, मगर एक प्लास्टिक की पतली तिरपाल को छोड़ डेढ़ महीने तक उन्हें कोई राहत नहीं मिल सकी। रात को कड़क ठंड में के लिए नन्हें बच्चे, बुजुर्गों की बदहाली का रोना बार–बार रोया, तो जाकर तहस. ीलदार ने आर्मी को एक टैंट देने को चिट्टी लिखी। ऐड़ी–चोटी का जोर लगाकर यह टैंट आर्मी से निकलवाकर खंडहर घर के पास लगाया ही था कि कुछ दिन बाद आर्मी ने इसे भी वापस लौटाने का फरमान सुना दिया। बस इस टैंट को भी चोटी तक पहुंचाने और वापस ले जाने का ही काम हुआ। अब साधन विहीन हो चुके मौ. फरीद अपने करीब 13 सदस्यों के परिवार, जिनमें डेढ़ साल के मासूम बच्चे से लेकर 70 साल पार कर चुके बुजुग भी शामिल हैं, के साथ खेतों में तिरपाल के नीचे जंगली जानवरों के आतंक के सायें और तेज बर्फीली हवाओं के थपेड़ों में काली रातें गुजारने को मजबूर था। युसुफ मेहरअली सेंटर से एक कमरे की चाहरदीवारी और छत के लायक टीन की चादरें मिलीं, कंबल आदि मिले तो फरीद की आंखें नम हो उठीं और चेहरे पर परिवार को सर्द मौसम में सकुशल रख पाने की उम्मीद।

इस सबके इतर एक और बानगी भी थी। सर्वे के पहले दिन हम जम्मू सिटी से सीधे खोढ़ ब्लॉक के करीब 1500 की आबादी वाले हिंदू बाहुल हमीरपुर गांव पहुंचे। पाकिस्तान यहां से चंद कदमों के फासले पर है। आर्मी ने ग्रामीणों के एतराज के बावजूद गांव के पास से गुजर रहे एक नाले के पानी को छोटा बांध बनाकर सालभर पहले ही रोक दिया था। तर्क था कि इससे पाक सीमा से तस्करी रूकेगी। भारी बारिश के चलते बांध में जमा पानी ग्रामीणों के लहलहाते खेतों को रौंदते हुए घरों में घूस आया। हालांकि, गांव टापू जैसी जगह पर बसा होने से नीचले हिस्से के कुछ घरों में हल्का गाद ही घूसा, मगर खेती काफी गई। गांव के एक हिस्से में बर्बाद हुए खेतों के किनारे पांच गरीब परिवारों के घर–आंगन मलबा घूसने से पूरी तरह बर्बाद हो गए थे। इन परिवारों में तीन दलित और दो राजपुतों के थे। गांव के पक्के और दो मंजिला घरों के पीछे ये झौपड़ीनुमा जर्जर घर नजर ही नहीं आ रहे थे। बेघर परिवार दूसरों के यहां आसरा लिए थे, मगर घटना के आठ दिन बाद इन्हें राहत तो दूर कोई सुधलेवा भी नहीं मिला। हां, पास ही सरकार ने एक राहत षिविर में प्रभावितों के रहने–खाने की व्यवस्था जरूर कर रखी थी। क्षेत्र में गांव का काफी दबदबा है, शायद इसलिए यहां सूबे के मुख्यमंत्री, उपमुख्यमंत्री त्रासदी के बाद पहुंचे, मगर पीछे स्थित मलबे में दबे घरों की तरफ झांकना शायद उन्होंने भी जरूरी नहीं समझा। इसलिए गांव के चौक में ही लोगों से मुलाकात कर लौट गए। हम भी पूरा सर्वे करने के बाद लौट ही रहे थे कि गाड़ी में बैठते ही मुझे अचानक राहत शिविर में मिली महिला पोली देवी याद आई। उन्होंने रोते–बिलखते पहले राजेश भाई, कुलदीप सिंह और फिर मुझे बताया था कि उनकी बेटी पूजा की शादी आने वाली 25 दिसंबर को है और घर–सामान सब तबाह हो गया है। मैने राजेश भाई को पोली देवी की याद दिलाई और वहां मौजूद कुछ लोगों के साथ उनके घर की तरफ बढ़े। मौके पर जाकर जो देखा वो हैरान कर देने वाला था। पांच घर–आंगन पूरी तरह दलदल में दबे थे। मैं इनमें से एक घर के दरवाजे तक कुछ फोटो खींचने बमुश्किल पहुंच सका। मजेदार बात यह है कि इस नुकसान को देखने सीएम, डिप्टी सीएम समेत उनके साथ आए प्रशासनिक अमले में षामिल अधिकारियों ने भी नहीं देखा, न ही पूरे गांव के भ्रमण के दौरान किसी ने हमें इन परिवारों के बारे में बताया। पहले सरकार और फिर हमें लिखवाई गई प्रभावितों की सूची में सरपंच ने भी इन बेघर परिवारों का नाम गांव के दूसरे परिवारों के साथ सामान्य तरीके से ही दर्शाया।

जम्मू से लौटने के बाद मेरे मन में यही चल रहा था कि हमीरपुर गांव के मुकाबले राजौरी–पूंछ के हजारों गांव कई ज्यादा प्रभावित थे, मगर सीएम का हेलीकॉप्टर प्रभावशाली गांव हमीरपुर की तरह यहां नहीं उतरा। न ही उनके लिए राहत शिविरों की व्यवस्था हुई। हमीरपुर में भी असल प्रभावितों से न कोई मिला, न ही उनकी सुध किसी ने ली। यहां पूरी तरह बेघर हुए पांचों परिवारों को हर स्तर पर सामान्य तरीके से लिया गया, क्योंकि वो गरीब थे, उनका कोई बोलने–सुनने वाला नहीं था। राजौर–पूंछ का भी यही हाल था। जाहिर है, प्रकृति की मार भी गरीबों पर ही पड़ती है और हर स्तर पर उपेक्षा भी उसकी ही सबसे ज्यादा होती है। उनकी आवाज दबी की दबी रह जाती है और हालात बद से बदतर। उपर से नीच तक उनका कोई कहने–सुनने वाला नहीं होता। अमीर का नुकसान हो या नहीं, मगर अपने लंबे हाथ और रसूख के दम पर आपदा का फायदा सबसे ज्यादा फायदा वही उठाता है। बीते साल उत्तराखंड में आई भयंकर त्रासदी का भी यही अनुभव है।

बहरहाल, युसुफ मेहरअली सेंटर इन क्षेत्रों में राहत और पुनर्वास के काम में जुट गया है। प्रभावितों तक हर बुनियादी चीज पहुंचे, इसकी कोषिष जारी है। सेंटर ने जम्मू सिटी, नगरोटा, राजौरी और रामबन में जनसंपर्क केंद्र भी स्थापित किए हैं, ताकि राहत के काम को देशभर से आने वाले कार्यकर्ताओं को रास्तों की स्थिति, प्रभावित जगहों की सही जानकारी मिल सके, साथ ही जरूरत पड़ने पर ठहरने की भी व्यवस्था हो सके। युसुफ मेहरअली सेंटर रिलिफ कमेटी का भी राज्य और क्षेत्रीय स्तर पर गठन किया गया है। ताकि, राहत सामग्री का उचित जगहों पर और सही ढंग से वितरण हो सके। जे एंड की रिलिफ कमेटी में पूर्व सांसद शेख अब्दुल रहमान, राजेश वर्मा, सामाजिक कार्यकर्ता अमृत वर्शा, जबर सिंह वर्मा और कुलदीप सिंह शमिल हैं। पुंछ और राजौरी की विपरीत भौगोलिक परिस्थितियों को देखते हुए वहां अलग से रिलिफ कमेटी का गठन किया गया। इसमें सरपंच अश्विनी शर्मा, सेवानिवृत्त सूबेदार दलिप कुमार, धनीराम, आपदा प्रभावित मौ. रखमान, मौ. फरीद, मौ. रसीद और मौ. फारूख गर्जर को षामिल किया गया है। उत्तराखंड में भी इसी तरह से काम चल रहा है। समा. जवादी विचारों से जुड़े संगठन–संस्थाएं जैसे एनएपीएम, युसुफ मेहरअली युवा बिरादरी, राष्ट्र सेवा दल, आरोग्य सेना, सोशलिस्ट फाउंडेशन आदि जम्मू–कश्मीर के प्रभावित हिस्सों में मदद पहुंचाने में जुटे हैं।

एक गरीब की विनम्र चुनौती ....

गांधी जी ने कहा था कि राजनीतिक आजादी के बाद भारत के प्रशासन को भी बदलना होगा। क्योंकि एक लोकतांत्रिक समाज व स्वराज की तरफ काम करने की दिशा में औपनिवेशिक प्रशासनिक ढांचा परलोकगामी ही साबित होगा। अगर यही प्रशासनिक ढांचा जारी रहा तो सामान्य नागरिक को ये अहसास ही नहीं होगा कि उसको भी आजादी मिली है। नियम, कानूनों से जकड़ा व विकास की आड़ में वो हमेशा छला जाता रहेगा। इसलिए पूरे प्रशासन तंत्र को हमें 'सेवक' तंत्र के रूप में बदलना होगा। प्रशासनिक सेवा के वास्तविक अर्थ को सार्थकता प्रदान करनी होगी। उन्होंने कहा था कि हम अब विनम्र सेवक की भांति गांव में जाकर काम करें; लाट साहब की तरह नहीं, ताकि लोगों के अनुभवों को समझकर और यदि हमारे पास कुछ साझा करने योग्य ज्ञान है तो विनम्रतापूर्वक उसे भी बांटकर परस्पर साझेदारी–संवाद से हम स्वराज का तंत्र विकसित कर सकें। वह समय आ गया कि अपना ज्ञान बाजू में रखकर लोकतांत्रिक अवसरों को लोकतांत्रिक समाज (स्वराज) में तब्दील करने हेतु इस तरह की प्रशासनिक सेवकत्व की इकाइयों को खड़ा किया जाए।

यह तो रही विकास नीति की बात। अब सामान्य व्यक्ति (गरीब नागरिक) के प्रति व्यवहार के स्तर पर देखें कि इस समाज में तमाम नीतियों को संचालित करने की जिम्मेदारियों के पद पर बैठे लोग, जिहें हम 'अफसर' कहते हैं, उनका रवैया व्यवहार गरीब आदमी के प्रति कैसा है? देखें तो पता चलेगा कि उसे ऐसा लगता है जैसे वह, राजा है और प्रजा 'गरीब नागरिक' है, याचक है, भिखारी है। वह चाहे तो उन पर कुछ कृपा कर सकते हैं, अहसान कर सकता है न चाहे तो उसकी मर्जी। हमारे गांव का एक 'गरीब नागरिक' पटवारी के पास जाता है, तहसील ब्लॉक में कुछ काम के लिए जाता है; (जिलाधीश का हम यहां जिक्र नहीं कर रहे क्योंकि गरीब नागरिक की उस तक पहुंच एक दिवास्पन ही है कि वो बिना किसी झिझक ऑफिस में जाकर बात कर सकें) कुछ मामूली जमीन संबंधी, या मामूली झगड़े से संबधित व पेंशन इत्यादि संबंधी काम हेतु तो प्रशासनिक कर्मचारी का रवैया एवं बातचीत का तरीका जगजाहिर है। यह कहने में ज्यादा अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उससे 'पशुतुल्य' व्यवहार की गुंजा. इश ज्यादा रहती है। वहां 'पशुतुल्य' कहने का अर्थ पशुओं को कमतर आंकना नहीं है। बल्कि व्यवहार की तुलना दिखाना भर है। इससे 'पशु' घटिया नहीं हो जाता बल्कि हमारी चेतना पर प्रश्नचिन्ह उठता है कि लोगों के प्रति संवेदनशीलता का ये स्तर है तो पशुओं के प्रति कैसा होगा अंदाजा लगाया जा सकता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में हर व्यक्ति केवल व्यक्ति नहीं होता एक सम्मानित नागरिक होता है लेकिन वो नागरिक की हैसियत से तो दूर रहा, सामान्य मनुष्य समझने की भी भूल प्रशासनिक कर्मचारी–अधिकारी कर दें तो गनीमत समझी जायेगी; जो लोगों की सुविधा के लिए ही नौकरी कर रहा है।

यह तो रही सामान्य कर्मचारी की बात; अब आई.ए.एस. अधिकारी, जिसको सर्वयोग्यता गुण संपन्न माना जाता है। प्रशासनिक ढांचा उसके निर्देशन पर चल रहा है; जिसमें भ्रष्टाचार तो है ही, सही समय पर लोगों की जरूरतों को पूरा न कर पाने की अयोग्यता के साथ–साथ व्यवहार का अजनबीपन भी है। जिसके कारण 'गरीब नागरिक' इस तंत्र से भयभीत रहता है और ये दुआ करता है कि इनसे कभी पाला न पड़े। आश्चर्य ये है कि यही तंत्र लोगों की सेवा के लिए बना है। ये मैं नहीं कह रहा वह तो 'भारतीय प्रशासनिक सेवा' में आये 'सेवा' शब्द से स्पष्ट होता है पर यहां 'सेवा' का 'सेवक' का धर्म व नौकरी का कर्तव्य भूलकर स्वयंभू मालिकी का रौब यत्र–तत्र दिखाई देता है। जन सामान्य के प्रति इस असंवेदनशीलता के चलते इस तंत्र से क्या अपेक्षा की जा सकती है। फिर ऐसे में हमारी लोकतांत्रिक सरकार का क्या अर्थ रह जाता है ये सवाल उठता है। दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र का ढ़ोल बजाने वाले लोगों के लिए भी यह एक सवाल है। हमारी सरकार है का मतलब भी यहां से समझ में आना चाहिए।

हम सरकार को ढूंढने–खोजने जायें तो हमारे हाथ लगता है 'अधिकारी–कर्मचारी'। जनसामान्य के लिए वही सरकार है जो नियम, कानून, विभाग की आड़ में लोगों पर राज करते हैं क्योंकि यह वर्ग, शासक व आवाम के बीच तमाम नीतियों को क्रियान्वित करने हेतु पुल का काम करता है। इसके और आवाम के बीच क्या संबंध हैं इस पर योजनाओं की सफलता–असफलता निर्भर करती है। यह तंत्र नियम, कानून, नीतियों का अपने ढंग से अर्थ निकालकर लोगों पर लागू करने के लिए स्वतंत्र है। हमारे बीच में, सामान्य जनता के बीच में सरकार के प्रतिनिधि के रूप में जो आदमी है, वह अधिकारी ही हैं। जो हमें सरकार के अच्छे–बुरे होने का अहसास कराता रहता है। उसे धौंस के अधिकार के साथ लोगों का अपमान करने व उन पर कृपा दृष्टि बनाने का मनमाफिक अधिकार प्राप्त है। 'जनता का शासन' की जगह 'जनता पर शासन' इस बीच के मध्यकर्ता द्वारा ही हो रहा है। इस प्रशासनिक ढांचे के निकम्मेपन के कारण लोग हमेशा इसके खिलाफ संघर्ष करने को बाध्य हैं। पर जनता हमेशा सड़कों पर नहीं उतर सकती लोगों को जीना भी होता है। जीवन–जीविका की भी फिक्र करनी होती है। लोकतंत्र के चार स्तंभों में से एक स्तंभ 'प्रशास. निक ढांचा' है। पहले स्तंभ 'शासन प्रणाली' (व्यवस्थापिका) को जनता अपने वोट के अधिकार, अपनी भागीदारी के द्वारा चुनती है। बाकी के तीन पाये किसी जन भागीदारी, लोकतांत्रिक प्रक्रिया से चुनकर नहीं आते बल्कि वो किसी अन्य विधि से इस व्यवस्था मे आते हैं और जिन विधियों–शिक्षण प्रणालियों के तहत जिन उद्देश्यों से ये व्यवस्था में आते हैं, उन पर गौर फरमाने की आवश्यकता है क्योंकि विकासशील देशों के प्रशासन का अनुभव कुछ–कुछ वैसा ही है जैसा औपनिवेशिक काल में औपनिवेशिक प्रशासन का था। बस इसमें एक तब्दीली आ गयी है वो ये कि गुलामी के काल में इस तंत्र के आका अंग्रेज थे, उनको डर के कारण काम करना पड़ता था; अब आका हिन्दुस्तानी हैं। उनमें से ज्यादातर प्रशासनिक अधिकारियों से योग्यता में खुद को कम समझते होंगे तो उनके प्रति हीन भावना का शिकार हो जाते होंगे। इसलिए निर्देश देने का काम आसान नहीं रह जाता। संभव है कि शासक वर्ग, प्रशासन की हाथ की पतंग बन जाए व डोर इनके हाथ में हो। आजादी के बाद इस तरह से अपने आकाओं का डर प्रशासनिक तंत्र से निकल चुका है। उनको पता है कि हर सरकार पांच साल की मेहमान है पर उनकी तो लाइफटाइम की नौकरी है। यही कारण है कि आजाद हिन्दुस्तान का प्रशासन सामान्य नागरिक के प्रति अपना बातचीत का व्यवहार भी सम्मानजनक नहीं कर पाया है, अन्य व्यवस्था को तो छोड़ें। आजाद हिन्दुस्तान में इस ढांचे को ज्यों का त्यों बनाये रखना मजबूरी नहीं थी पर फिर भी यह जारी रहा। उसी रूप में ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया गया। जनप्रतिनिधि तो केवल पांच साल के लिए चुना जाता है परन्तु एक प्रशासनिक व्यक्ति को उसकी उम्र सीमा तक झेलना हमारी बाध्यता है और उसकी मानसिकता जनसाधारण के मनों पर बोझ ही है। तो फिर व्यवस्थाओं के लोकतंत्रीकरण का क्या अर्थ रह जायेगा? ऐसी मानसिकता के लोग जो ये मानते हैं कि जनसाधारण को अपनी व्यवस्थाओं, समाज बंदोबस्तों को चलाने की सहूर–काबिलियत नहीं है तो उनका व्यवहार निहायती रूप से इसी ढंग का होगा।

इन तमाम तरह की विसंगतियों को देखते हुए जब मैं मूल सवाल पर लौटता हूं कि वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था में 'प्रशासनिक गरीबी' को प्रशासनिक लोकतंत्र में बदलने के लिए किस तरह कदम उठाये जाने चाहिए तो उसकी एक धुंधली तस्वीर मेरे मन में कौंधती है। इसको समझने के लिए मैं एक सामान्य व्यवस्था का सहारा लेता हूं। मैं पहाड़वासी हूं ; यहां यातायात की सुविधा का सबसे महत्वपूर्ण साधन 'बस' है। 'बस' को चलाने वाले दो हिस्से हैं; एक ड्राइवर, दूसरा कंडक्टर बाकी सब यात्री हैं। ड्राइवर माना शासक वर्ग है, कंडक्टर प्रशासनिक अधिकारी और यात्री हैं सामान्य नागरिक। ड्राइवर के पास ये जिम्मेदारी है कि वह हर पड़ाव पर मिलते रहे यात्रियों को बिना किसी भेदभाव के बस में बिठाये और गंतव्य तक पहुंचे। यहां गौरतलब है कि गन्तव्य ड्राइवर का नहीं बल्कि यात्री का है। यात्री को उसके गन्तव्य तक पहुंचाने का दायित्व कंडक्टर का है। यात्री ने पैसा दिया और बदले में कंडक्टर ने उसे टिकट दिया तुरंत हाथों–हाथ, अब यात्री अपने गन्तव्य तक जाने के लिए अधिकृत हो गया। ये एक साधारण सी बात है क्योंकि मैं साधारण आदमी हूं जटिलताओं से चीजों को देखना मुझे स्वीकार्य नहीं होता। अब लोकतंत्र के दो पायों को ध्यान में रखकर देखें तो ड्राइवर नामक शासक की जिम्मेदारी है कि वह समाज की आर्थिक सामाजिक हालातों को ध्यान में रखकर यात्रियों को गन्तव्य तक सुरक्षित पहुंचाये। यहां सुरक्षा का अर्थ आर्थिक–सामा. जिक सुरक्षा ही होगा। कंडक्टर रूपी प्रशासन जनसाधारण रूपी यात्रियों के गन्तव्यों की समझ रखकर उनको गन्तव्य तक पहुंचने में सहयोग करे। जिस तरह कंडक्टर बिना बिलंब यात्री द्वारा बताये गये गंतव्य तक पहुंचने के लिए उसे अविलंब टिकिट मुहैया कराता है। क्या हमारी लो. कतांत्रिक व्यवस्था में समझदार प्रशासनिक तंत्र ऐसा कर पा रहा है। क्या जब कोई गरीब आदमी किसी संबंधित अधिकारी के पास अपने मामूली से काम को लेकर, मान लिया कि पेंशन के लिए जाता है जो कि उसका अधिकार है तो क्या तत्संबंधी विभाग उस पर अविलंब कार्रवाही कर रहा है? अभी हाल की घटना है, हमारे गांव के एक वृद्ध ने पेंशन के लिए कितने चक्कर लगाये, बैंक से लेकर तत्संबंधी विभाग तक के। आखिर में वे बिना पेंशन मिले उसी के इंतजार में दुनिया से विदा हो गये; यह एक उदाहरण है। हमारी तो अपेक्षा है, प्रथम अपेक्षा कि उस वृद्ध से सम्मानजनक ढंग से बातचीत कर लें तो उसे लगेगा कि उसे आधी पेंशन मिल गयी है और इस तंत्र में उसकी भी बात सुनी जाती है, उसकी बात का कोई महत्व है।

हमारा ये कहना है कि जैसे बस के यात्री को बिना किसी विलबं के सम्मानजनक ढंग से बस का टिकट मिल जाता है वैसे ही जनता की सामान्य जरूरतों पर तुरंत कार्रवाइयां होनी चाहिए। सामान्य से काम के लिए लोगों को बार–बार कार्यालयों–अधिकारियों के चक्कर न काटने पड़े क्योंकि लोगों को अपनी अन्य जरूरतों की भी चिंता करनी होती है। और गांव–घरों में सामान्य अपराध के निपटारे के लिए पुलिस–प्रशासनिक अधिकारी अपनी अकड़–रौब का नहीं बल्कि निष्पक्ष होकर 'पंच' की तरह काम करें और झगड़ा स्थानीय स्तर पर निपटायें। कोई भी शासन की जनकल्याणकारी नीति, योजना किसी इलाके में लागू होती है तो उससे पहले क्षेत्र के बहुसंख्य लोगों की राय प्राप्त कर ली जाए खासकर उन लोगों की राय जिनकी जीवन–जीविका उसी क्षेत्र की स्थिति पर निर्भर करती है। ये उस जिले के अधिकारी की जिम्मेदारी होनी चाहिए कि वह उस क्षेत्र का व्यापक सर्वेक्षण कराए व खुद जाकर लोगों की बात सुने न कि अपने निर्णयों को जाकर थोपे। जो क्षेत्र के लिए जरूरी हों वो कदम सहभागिता के साथ उठायें जायें। क्षेत्रों में मनमानी योजनायें थोपने से जो परिणाम हुए हैं उनका मानवीय–सामाजिक–प्राकृतिक रूप से आंकलन किया जाए। ये जिम्मेदारी प्रशासनिक वर्ग की बनती है।

गांधी जी ने कहा था कि राजनीतिक आजादी के बाद भारत के प्रशासन को भी बदलना होगा। क्योंकि एक लोकतांत्रिक समाज व स्वराज की तरफ काम करने की दिशा में औपनिवेशिक प्रशासनिक ढांचा परलो. कगामी ही साबित होगा। अगर यही प्रशासनिक ढांचा जारी रहा तो सामान्य नागरिक को ये अहसास ही नहीं होगा कि उसको भी आजादी मिली है। नियम, कानूनों से जकड़ा व विकास की आड़ में वो हमेशा छला जाता रहेगा। इसलिए पूरे प्रशासन तंत्र को हमें 'सेवक' तंत्र के रूप में बदलना होगा। प्रशासनिक सेवा के वास्तविक अर्थ को सार्थकता प्रदान करनी होगी। उन्होंने कहा था कि हम अब विनम्र सेवक की भांति गांव में जाकर काम करें; लाट साहब की तरह नहीं, ताकि लोगों के अनुभवों को समझकर और यदि हमारे पास कुछ साझा करने योग्य ज्ञान है तो विनम्रतापूर्वक उसे भी बांटकर परस्पर साझेदारी–संवाद से हम स्वराज का तंत्र विकसित कर सकें। वह समय आ गया कि अपना ज्ञान बाजू में रखकर लोकतांत्रिक अवसरों को लोकतांत्रिक समाज (स्वराज) में तब्दील करने हेतु इस तरह की प्रशासनिक सेवकत्व की इकाइयों को खड़ा किया जाए। प्रशासनिक अधिकारी शासक की जगह विन्रम शोधार्थी की भूमिका ज्यादा निभायें। यह देखें कि हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था को समृद्ध बनाने के लिए उनके क्षेत्र में क्या–क्या अवसर मौजूद हैं और उनको कैसे समाजोपयोगी बनाया जा सकता है। ***शेष पेज – 5 पर ...***

एक गरीब की विनम्र चुनौती ....

क्या हम गरीबों की हितैषी सरकार से ये अपेक्षा रख सकते हैं कि वह बेहतर लोकतंत्र के लिए प्रशासकीय ढांचे को अधिक समाजोपयोगी, गरीबोन्मुखी, संवेदनशील व जवाबदेह बनाने हेतु आवश्यक कदम उठायेगी। ताकि तमाम नीतियां, नियम, गरीबजनगामी हो सकें। राजयुगीन समाज में राजा व अवाम के बीच रिश्ते व न्याय की जहांगीरी कसौटी थी; जहां सीधा जुड़ाव दिखता है। आज लोकतांत्रिक समाज में, जनप्रतिनिधियों, प्रशासनिक इकाइयों व अवाम के बीच के रिश्ते व सहयोग की क्या कसौटी हो। जिससे गरीबों को भी ये महसूस हो कि वे राजशाही नहीं बल्कि अपनी भागीदारी द्वारा चुनी गयी लोकतांत्रिक सरकार व जनकल्याणकारी प्रशासन के साथ जी रहे हैं। हमारी संवाद प्रक्रियाओं व चिन्ता का एक केन्द्रीय बिन्दु ये भी है क्योंकि गरीबी से इसका सीधा ताल्लुक है। गरीबों में आजादी की भावना पनपे इसकी संभव शुरूआत भी शायद इस बिन्दु से शुरू हो सकती है।

जब मैं एक वैकल्पिक शिक्षण संस्थान में अध्ययनरत था तो हमारे अध्यापक महोदय ने हमको 4–5 दिन के लिए बिना किसी पैसे व सामान के गांवों में भेज दिया था कि जाओ और समझो व्यवस्थायें कैसे चलती है और खाना लोगों से मांगकर खाओ; हमने ये काम किया। शुरू–शुरू में बहुत झिझक महसूस हुई परंतु बाद में वो जो अपने कुछ अलग होने को अहंकार था वो जाता रहा और मन में एक तरह की विनम्रता का भाव पैदा हुआ। क्योंकि कितने तरह के लोगों की प्रतिक्रियाओं से साबका पड़ा और हमें अपने ज्ञान को जांचने का अवसर मिला। हमारे प्रशासनिक तंत्र में पढ़े–लिखे, संभ्रान्त माने जाने वाले तबके में जो अतिरिक्त शासनकर्ता का भाव आ गया है उसके लिए तो जरूरी है कि वे 'सेवकत्व' स्वीकार करें, साथ ही प्रशासनिक लोकतंत्र की यह अनिवार्य आवश्यकता है। यदि वाकई कोई श्रेष्ठता व काबिलियत है तो उसको भी क्रियान्वित करने का बेहतरीन मौका है, प्रमाणित करने का अवसर है। लोकतंत्र को मजबूत–समृद्ध करने का श्रेय भी इस तंत्र को जायेगा। यह प्रशासनिक तंत्र के लिए ऐतिहासिक व अविस्मरणीय होगा इससे उसे अपने किताबी ज्ञान की जकड़न और सीमा से भी मुक्ति का अहसास होगा। प्रशासनिक तंत्र के लिए भविष्य का स्वरूप इस रूप में दिखता होगा ताकि एक भारतीय लोकतांत्रिक प्रशासन की बेहतर नींव डाली जा सके। दूसरा एक और पहलू जिसका जिक्र हम पहले कर चुके हैं वह यह कि हम नीति–निर्धारकों को तो, लोगों की वोट की भागीदारी द्वारा चुनते हैं पर किसी भी प्रशासनिक कर्मचारी या अधिकारी के लिये ये प्रक्रिया लागू नहीं होती उसके लिए कुछ निश्चित योग्यताओं का होना मान्य होता है। उस योग्यता को हम विविध शिक्षण संस्थानों द्वारा प्रदान किये गये सर्टिफिकेट को मानते हैं उन्हीं के आधार पर विश्वास कर किसी को तंत्र के क्रियान्वयन के लिए प्रमाणित मान लिया जाता है। जो हमारे प्रशासन के साथ हुए अनुभवों से मेल नहीं खाता है। औपनिवेशिक प्रशासनिक मानस में निर्मित अधिकारी जब हिन्दुस्तान जैसे विविधतापूर्ण, लोकतांत्रिक समाज की तरफ गति कर रहे समाज में नीतियों के क्रियान्वयन हेतु आता है तो वह इसकी समझ की कमी के कारण केवल औपनिवेशिक शासक की तरह ही अपनी भूमिका देखने लगता है। दूसरी तरफ शासक वर्ग के मूल्यांकन की प्रक्रिया हमारे पास मौजूद है भले ही पांच साल की प्रक्रिया हो। पांच साल बाद हम अपने मत की भागीदारी के जरिये जन प्रतिनिधियों को बदल सकते हैं। पर प्रशासन के साथ ऐसा नहीं है। इसलिए वह ज्यादा ढीठ है। 'कोउ नृप आये, हमें का हानी' ये उक्ति उसके लिए सटीक बैठती है। उसकी नौकरी सरकार की तरह बदलती नहीं है। इसलिए प्रारंभिक तौर पर इस तंत्र की दुरूस्ती के लिए आवश्यक है कि केवल शिक्षण संस्थानों के भरोसे न छोड़कर एक लोकतांत्रिक जवाबदेही की प्रक्रिया के तहत एक आचरण संहिता प्रशास. निक तंत्र के लिए बननी चाहिए। ताकि 'गरीब नागरिक' को किसी भी तरह का भ्रष्ट कर्मचारी–अधिकारी हमेशा न झेलना पड़े और सामाजिक अपेक्षाओं–दबावों में उसको खुद को इस जिम्मेदारी के योग्य बनाने का भी अवसर मिलता रहे। उसके लिए भी लोकतंत्र उसकी उन्नति में सहायक हो। इसके तहत किसी कर्मचारी अधिकारी को भी उसके जिम्मेदारी के पद पर काबिज हो जाने के बाद 5 साल का समय दिया जा सकता है। इसमें उस क्षेत्र के विभिन्न समाज वर्गों के प्रतिनिधित्व वाली कमेटी हो जो ये देखे कि उक्त अधिकारी ने कितनी जिम्मेदारी से कार्य निवर्हन किया। यह कमेटी अनौपचारिक रूप से गठित की जा सकती है। उस क्षेत्र व कार्य से संबंधित लोगों की कितनी समस्याओं का निदान किया, किस तरह का व्यवहार जनसामान्य के प्रति रहा। किन कल्याणकारी योजनाओं को उक्त क्षेत्र में सफल कार्यान्वित किया? इत्यादि मिलाकर एक 'जन आचरण सं.हता' या 'लोक आचरण' संहिता बनाई जा सकती है। इस तरह की जवाबदेही में खरा न उतरने पर कार्रवाही की जाए कि वह आगे तत्संबंधी प्रशासनिक कार्य को करने योग्य है कि नहीं। इस तरह की जवाबदेही की कार्रवाही से वर्तमान प्रशासनिक तंत्र को जिम्मेदार भागीदारी के लिए मुस्तैद किया जा सकता है। एक और महत्वपूर्ण सवाल भाषा का है; हमारे प्रशासनिक तंत्र में शीर्ष स्थानों पर बैठे लोग अंग्रेजीदां है जिससे देश की बहुसंख्य जनता से उनका कोई जुड़ाव नहीं हो पाता। जिनके लिए अंग्रेजी भाषा जीवन की तमाम योग्यताओं व समस्याओं के निदान की जादुई छड़ी है पर दुर्भाग्य से ये प्रमाणित नहीं हो पाया है। इसलिए यह अनिवार्यता की जा सकती है कि कोई भी अधिकारी वर्ग का नागरिक जहां भी तैनात है वो वहां की स्थानीय भाषा में ही लोगों के साथ संवाद करें। प्रशास. निक कार्यों व मानसिकता का हिन्दुस्तानीकरण का यह भी एक रास्ता है। क्योंकि भाषा केवल भाषा नहीं बल्कि संस्कृति की वाहक भी है इसलिए संस्कृतीकरण का प्रश्न भी इससे जुड़ता है। नागरिकों के नीति संबंधी तमाम कागजात उस भाषा में होने चाहिए जिसके साथ उसका दैनन्दिन व्यवहार चलता है। इसलिए क्षेत्रीय भाषायी योग्यता इसका एक और पहलू हो सकता है। ताकि नीति, नियम, सर्वजनगामी, सर्वजनग्राही हो सके अन्यथा लो. कतंत्र का अर्थ ही क्या रह जायेगा। क्योंकि हमारा मूल सवाल ये है कि एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में, विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र में नागरिक सम्मान, प्रतिष्ठा, भागीदारी व समृद्धता बढ़े, इसके लिए हमारा प्रशासन का ढांचा कैसा होना चाहिए। सामान्य नागरिक को कब लगेगा कि प्रशासनिक जमात हमें सताने के लिए नहीं बल्कि सहयोग के लिए बना हुआ है। 'सामान्य नागरिक' के प्रति इस तबके का व्यवहार भी बातचीत में सम्मानजनक हो जाये तो इस देश के करोड़ों लोगों; अख्तर, कौशल्या देवी, पॉल, श्याम लाल, सदानंद, जसवंद... को लगेगा कि वह एक लोकतांत्रिक समाज में कल्याणकारी प्रशासनिक व्यवस्था के साथ जी रहा है, जिमसें उसका सामाजिक व आर्थिक हित सुरक्षित है। प्रशासनिक कर्मचारी को, 'सेवक' को भी लोकतंत्र की शक्ति का आभास होगा।

अन्यथा वर्षों से सामाजिक–आर्थिक स्तर पर पहले से एक विभाजन की विषमता को झेल रहे समाज के लिए, नई आर्थिक नीतियों के दबाव में जीविका के संकट व प्रशासनिक तंत्र की असंवेदनशीलता, कई अन्य तरह की समाज विषमताओं को पैदा कर सकती है, जिसकी बड़े पैमाने पर शुरूवात हो चुकी है। समाज विभाजन इस कदर बढ़ रहा है कि संकट के समय में साथ देने वाली परंपरायें तेजी से नष्ट हो रही हैं। नागरिक समाज का एक हिस्सा अपने ही समाज में अजनबीपना, बेगानापन महसूस कर रहा है। उसके पास अच्छे दिनों के इंतजार के सिवा और कोई रास्ता नहीं है। अन्यथा बुरे दिन तो सूर्योदय के साथ ही रोज बाहें पसारे खड़े हैं। क्या हम गरीबों की हितैषी सरकार से ये अपेक्षा रख सकते हैं कि वह बेहतर लोकतंत्र के लिए प्रशासकीय ढांचे को अधिक समाजोपयोगी, गरीबोन्मुखी, संवेदनशील व जवाबदेह बनाने हेतु आवश्यक कदम उठायेगी। ताकि तमाम नीतियां, नियम, गरीब. जनगामी हो सकें। राजयुगीन समाज में राजा व अवाम के बीच रिश्ते व न्याय की जहांगीरी कसौटी थी; जहां सीधा जुड़ाव दिखता है। आज लो. कतांत्रिक समाज में, जनप्रतिनिधियों, प्रशासनिक इकाइयों व अवाम के बीच के रिश्ते व सहयोग की क्या कसौटी हो।

जिससे गरीबों को भी ये महसूस हो कि वे राजशाही नहीं बल्कि अपनी भागीदारी द्वारा चुनी गयी लो. कतांत्रिक सरकार व जनकल्याणकारी प्रशासन के साथ जी रहे हैं। हमारी संवाद प्रक्रियाओं व चिन्ता का एक केन्द्रीय बिन्दु ये भी है क्योंकि गरीबी से इसका सीधा ताल्लुक है। गरीबों में आजादी की भावना पनपे इसकी संभव शुरूआत भी शायद इस बिन्दु से शुरू हो सकती है।

.....जारी.....

नोट : शेष अगले अंक में..

GANNON DUNKERLEY & CO.LTD.

(An ISO 9001-2000 Company)

REGISTERED OFFICE

NEW EXCELSIOR BUILDING, 3RD FLOOR, A.K. NAYAK MARG
FORT, MUMBAI-400001

TEL:91-22-22051231, FAX-91-22-22051232

Website : gannondunkerley.com

E-mail : gdho1@mtnl.net.in

GANNONS ARE SPECIALISTS IN INDUSTRIAL STRUCTURES, ROADS, BRIDGES (RCC AND PRESTRESSED CONCRCETE), RAILWAY TRACKS, THERMAL POWER, FERTILIZER, CHEMICAL, PAPER AND CEMENT PLANTS, WATER & WASTE WATER TREATMENT PLANTS, PILING FOUNDATION & FOUNDATION ENGINEERIG.

GANNONS ARE ALSO PIONEERS IN MATERIAL HANDELING WORKS, MANUFACTURE OF PRESTRESSED CONCRETE SLEEPERS, ERECTION OF MECHANICAL EQUIPMENTS & PIPING AND SUPPLY OF TEXTILE MACHINERY AND LIGHT ENGINEERING ITEMS

OFFICES AT :

AHMEDABAD - CHENNAI - COIMBATORE - HYDERABAD - KOLKATA
MUMBAI - NEW DELHI

लोग से दूर होता लोकतंत्र

लोकतंत्र का गुण सिखने के लिए ब्रिटेन और अमेरिका जाते हैं, लेकिन जनप्रतिनिधि के नाते जनत को सुनने और समझने के लिए उनके पास जाना मुनासिब नहीं समझते है। भाषणों में गरीबों के लिए घड़ियाली आंसू बहाते हैं, योजनाएं बनाते हैं, इसके लिए जनता पर टैक्स बढ़ाते हैं और साल में करीब 5.5 लाख करोड़ रूपये की छूट पूंजीपतियों को देते हैं। वोट मांगने के लिए अपने को मजदूर किसान का आम बेटा या बेटी बताते हैं, लेकिन इनका षपथ ग्रहण हो या पार्टी व पारिवारिक समारोह, उसमें सभी खास (नेता, अभिनेता, पूंजीपति, खिलाड़ी, नौकरशाह) लोग ही नजर आते हैं यानी मुंह में राम और बगल में छुरी।

सुनील कुमार

15 अगस्त 1947 के बाद कुछ लोग इसको सत्ता हस्तांतरण मानते हैं, तो कुछ राजनीतिक स्वतंत्रता तथा कुछ लोगों को यह पूर्ण स्वतंत्रता लगती है। स्वतंत्र भारत मानने वाले लोगों की तरफ से भारतीय लोकतंत्र को दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में प्रच. ारित किया जा रहा है। वह यह कहते नहीं थकते हैं कि यहां करोड़ों लोगों द्वारा चुनी गई सरकार होती है। कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका है जो किसी बिना दबाव व भेदभाव के काम करती है। न्यायपालिका, मीडिया स्वतंत्र जो धर्मनिरपेक्ष है, सबको अपनी मर्जी से धर्म चुनने का, विचार प्रकट करने का अधिकार है इत्यादी–इत्यादी। इन सभी तर्कों से महान लोकतंत्र को जिंदा रखने की कोशिश की जाती है। स्वतंत्र भारत के विचारों को कुछ समय के लिए सही भी मान लें तो मन में कुछ प्रश्न उठते हैं। कोई भी विचारधारा अपने उम्र के हिसाब से परिपक्क होती है। भारतीय लोकतंत्र जो कि 67 वर्ष पूरे कर चुका है वहां पर लिंग, धर्म, जाति, नस्ल का भेदभाव अभी क जिंदा क्यों है और यह दिनों दिन बढ़ता क्यों जा रहा है? षो. शित–पीड़ित, वंचितों की बात करने वाली विचारधाराओं पर दमन क्यों हो रहा है? क्यों लोगों को फर्जी मुठभेड़ों में मारा जा रहा है। क्यों हजारों आदिवासी जेलों में ठूस दिए गए हैं। क्या इसी को लो. कतंत्र कहा जा रहा है।

जन और जनस. ेवक में बढ़ती दूरी

अर्जून सेन गुप्ता रिपोर्ट के अनुसार भारती के 77 प्रतिषत लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं, वहीं भारती के 82 प्रतिषत सांसद करोड़पति–अरबपति हैं। 15वीं लोकसभा में 300 सांसद करोड़पति–अरबपति थे। 16वीं लोकसभा में इनकी संख्या बढ़कर 442 हो गई है। सांसद ही नहीं, विधानसभाओं में भी करोड़पति–अरबपति विधायकों की संख्या बढ़ी है। हरियाणा, महाराश्ट्र के हालिया विधानसभाओं में तो करोड़पति–अरबपति विधायकों की संख्या सांसदों ने सांसदों को भी पीछे छोड दिया है। हरियाणा के 83 प्रतिषत (90 में से 75) वहीं महाराष्ट्र के 88 प्रतिशत (288 में से 253) विधायक करोड़पति–अरबपति हैं। आम आदमी से खाद, पानी, बिजली से सब्सिडी छिनी जा रही हैं, वहीं इन करोड़पति–अरबपति सांसदों की कैंटीन में भारी सब्सिडी दी जाती है। आम आदमी के लिए फूटपाथ पर 8–10 रूपये में चाय मिल रही है। पहले से सेहतमंद सांसदों को वातानुकुलित कैंटीन में दाल 1.5 रूपये, डोसा 4 रूपये में और चाय और सूप कम्रषः 1 और 5 रूपये में परोसा जा रहा है। चुने हुए जनप्रतिनिधियों के लिए वाशिंगटन, पेरिस, लंदन जनदीक है, जहां आए दिन ये लोग सैर–सपाटे को जाते रहते हैं, लेकिन इनका अपदा संसदीय क्षेत्र दूर हो जाता है, जहां साल या पांच साल में एक दो बार बमुकिल ही चले जाया करते हैं। इसके लिए भी इन्हें यहां अच्छे होटलों में खाना और लग्जरी गेस्टहाउस में रहने की व्यवस्था होनी चाहिए। लोकतंत्र का गुण सिखने के लिए ब्रिटेन और अमेरिका जाते हैं लेकिन जनप्रतिनिधि के नाते जनत को सुनने और समझने के लिए उनके पास जाना मुनासिब नहीं समझते है। भाषणों में गरीबों के लिए घड़ियाली आंसू बहाते हैं, योजनाएं बनाते हैं, इसके लिए जनता पर टैक्स बढ़ाते हैं और साल में करीब 5.5 लाख करोड़ रूपये की छूट पूंजीपतियों को देते हैं। वोट मांगने के लिए अपने को मजदूर किसान का आम बेटा या बेटी बताते हैं, लेकिन इनका षपथ ग्रहण हो या पार्टी व पारिवारिक समारोह, उसमें सभी खास (नेता, अभिनेता, पूंजीपति, खिलाड़ी, नौकरषाह) लोग ही नजर आते हैं यानी मुंह में राम और बगल में छुरी।

बढ़ते अपराध

समाज में बढ़ते अपराध पर संसद चिंतित है, इसलिए बाल अपराधिकयों की उम्र कम करने 18 वर्ष से घटाकर 16 वर्ष) को कानून में बदलाव किए जा रहे हैं। जिससे कि अपराध पर लगाम लगायी जा सके। संसद में अपराधिक मामले वाले सांसदों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। 14वीं लोगसभा में 128, 15वीं लोकसभा में 162 और 16वीं लोकसभा में इनकी संख्या 186 हो गई है।

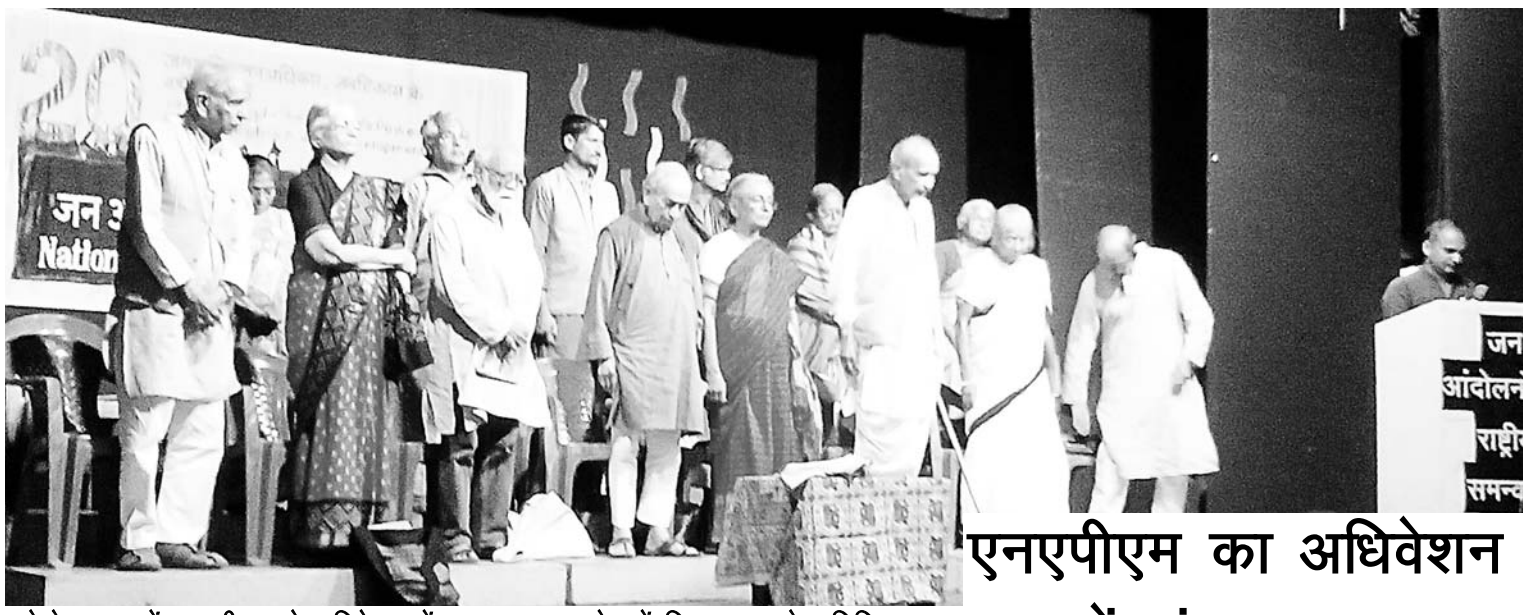

फोटो : पुना में एनएपीएम के अधिवेशन में उद्घाटन समारोह में शिरकत करते अतिथि।

फोटो : पुना में एनएपीएम के अधिवेशन में शिरकत करते मध्यप्रदेश के आदीवासी कलाकार।

एनएपीएम का अधिवेशन पुना में संपन्न

नेशनल अलायंस ऑफ पीपुल्स मोवमेंट (एनएपीएम) का नेशनल कन्वेंशन पुना स्थित राष्ट्र सेवा दल सभागार में संपन्न हुआ। 31 अक्टूबर से 2 नवंबर तक आयोजित इस अधिवेशन में देशभर के अलग–अलग संगठनों से जुड़े एक हजार से अधिक लोगों ने हिस्सा लिया। अधिवेशन के उद्घाटन मौके पर नर्मदा बचाओ आंदोलन की नेत्री मेधा पाटकर, वरिष्ठ चिंतक और लेखक अंरूंधती राय, मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्य सचिव और आदिवासियों के साथ कार्यरत डा. बीडी शर्मा, महाराष्ट्र के पूर्व गृहमंत्री और वरिष्ठ समाजवादी चिंतक भाई वैद्य, राष्ट्र सेवा दल के अध्यक्ष अरविंद कपोले, पूर्व विधायक और किसान नेता डा. सुनीलम आदि ने संबोधित किया। मधुरेश भाई, कामायनी बहन आदि ने संचालन किया। अधिवेशन के अंतिम दिन नई कार्यकारिणी का गठन किया गया। उत्तराखंड के जबर सिंह वर्मा एनएपीएम के नेशनल ऑर्गनाइजर बने।

स्वामी मुद्रक और प्रकाशक कलावती द्वारा शैलवाणी प्रिंटर्स, 1/12 न्यू चुक्खूवाला, देहरादून से मुद्रित तथा लेन एडन आउट हाउस, डिक रोड, कंपनीबाग, मसूरी, जिला देहरादून, उत्तराखंड से प्रकाशित।

संपादक
जबर सिंह वर्मा
फोन. 9927145123
9411513894

Email-
jantaraibar@gmail.com
jabars9@gmail.com

(समाचार संबंधी किसी भी प्रकार के विवाद का न्याय क्षेत्र मसूरी (देहरादून) ही मान्य होगा)

संरक्षक मंडल
डा. जीजी पारिख
सुश्री मेधा पाटकर
श्री विजय प्रताप
श्रीमति मंजू मोहन

संपादक मंडल
डा. सुनीलम
प्रो. सुभाष वारे
विमल भाई
गुड्डी
सुरेश भाई
प्रेम पंचोली
राजेश कुमार, विरेंद्र लाल

विशेष सहयोग :
युसुफ मेहरअली युवा बिरादरी